International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 05-09-2022, Accepted: 21-09-2022, Published: 08-10-2022
Volume 8, Issue 5, 2022, Page No. 40-42

आदिवासी विमर्श एवं समकालीन हिंदी कविता

भावना
असिस्टेंट प्रोफेसर हु0सि0बो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सोमेश्वर, अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

सारांश
वर्तमान समय में विमर्शों का जो दौर चल रहा है, उसमें आदिवासी विमर्श की गूंज भी बहुत जोरों–शोरों से सुनाई दे रही है। सामान्यतः आदिवासी से तात्पर्य आदिम युग में रहने वाली उन जातियों से है, जो लगभग 5000 वर्ष पुरानी भारतीय सभ्यता को संजोए हुए हैं। इन आदिवासियों की औपनिवेशिक युग से पूर्व अपनी एक स्वतंत्र सत्ता थी। प्रकृति के संसाधनों एवं जल, जंगल व जमीन पर इनका पूर्ण अधिकार था। औपनिवेशिक सत्ताएं जैसे–जैसे सुदृढ़ होती गयी वैसे ही इन आदिवासियों पर संकटों के पहाड़ टूटते चले गये। जल, जंगल और जमीन से इन्हें दूर करके इनके अधिकारों का हनन किया जाने लगा। पूँजीवादी ताकतों के प्रतिरोध एवं अपने निज व अस्मिता की तलाश में आज समकालीन हिंदी कविताओं में हमारे समक्ष जो आदिवासी विमर्श उभर कर आ रहा है वह इन्हीं सताये हुए लोगों की आवाज है। समकालीन हिंदी कविता में यह विमर्श अपनी प्रमाणिकता, यथार्थता, सशक्त एवं जीवंत अनुभूतियों के कारण एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में सामने आ रहा है। इन आदिवासियों के जीवन का मूल उद्देश्य प्रकृति का संरक्षण रहा है।

मूल शब्दः आदिवासी, आदिवासी विमर्श, जल, जंगल, जमीन, औपनिवेशिक सत्ता, समकालीन हिंदी कविता

प्रस्तावना

''सच्चा आदिवासी
कटी पतंग की तरह भटक रहा है
कहते हैं हमारा देश
इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।''[1]

'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से मिलकर बने आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है–प्रथम निवासी। इन्हें जंगली, वनवासी या अनुसूचित जनजाति के नाम से भी संबोधित किया जाता है। साथ ही इन्हें भारत माता की प्रथम संतान तथा आदि पुत्र के रूप में भी पहचाना जाता है। यह एक ऐसा जन–समूह है जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में रहकर अपने अनुभवजन्य ज्ञान, परम्परा, भाषा एवं संस्कृति के आधार पर प्रकृति व मुनष्य के परस्पर सम्मान व संरक्षण को प्राथमिकता देता है। साथ ही यह समाज अपनी भावी पीढ़ी एवं समस्त मानव जाति के लिए सभ्यता, तकनीक व विज्ञान के विनाशकारी आविष्कारों एवं दुष्प्रभावों से इस सुन्दर धरती को या यों कहें कि जल, जंगल व जमीन को बचाना चाहता है। किंतु दुर्भाग्य का विषय तो यह है कि यही आदिवासी समाज आज इस बाजारवाद के दौर में अपने इतिहास के अत्यंत संवेदनशील समय से गुजर रहा है। आज जल, जंगल, जमीन, शिक्षा और रोजगार इनकी चुनौतियों का कारण बनता चला जा रहा है।

अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व की जड़ों की तलाश करता हुआ यह आदिवासी समाज वर्तमान में साहित्य, इतिहास, कला, दर्शन इत्यादि भिन्न–भिन्न रूपों के माध्यम से अपनी पहचान को रेखांकित करने के लिए प्रयासरत है।

जल, जंगल, जीवन व संस्कृति के बचाव के लिए इन आदिवासियों द्वारा जो आंदोलन खड़े किये गये, उन्हीं का स्वरूप हमें हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श के रूप में देखने को मिल रहा है। इन वनवासियों की अंतहीन पीड़ा को मुख्य स्वर प्रदान करते हुए डॉ0 विनायक तुकाराम कहते हैं कि–''आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से सम्बन्धित साहित्य है। आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत से उत्तर नहीं दिया गया.....यह गिरी, कंदराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य है।''[2]

आदिवासी विमर्श आदिवासियों के द्वारा इस सभ्य समाज के विरुद्ध फूटा हुआ वह विरोध का स्वर है, जिसे समकालीन हिंदी कविता में मुखर अभिव्यक्ति मिली है।

समकालीन हिंदी कविताओं में आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनके ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण, अपमान, विस्थापन व साथ ही साथ उनकी संस्कृति एवं परम्परा पर हो रहे कुठाराघात का कारुणिक वर्णन बड़े ही मार्मिक रूप में किया गया है।

हम देखते हैं कि जहां एक तरफ स्वतंत्रता के उपरान्त आदिवासी विकाश कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करके इन वनवासियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ इनकी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों में कोई खास बदलाव देखने को नहीं मिलता है। आज भी अनेक समस्याएँ इनके सामने इनके अस्तित्व को निगलने के लिए सुरसा की भाँति मुँह फैलाये खड़ी हैं। इन समस्याओं में निर्धनता, बेरोजगारी, भूमि हस्तांतरण इत्यादि प्रमुख हैं।

समकालीन हिंदी कविताओं के माध्यम से इन विभिन्न समस्याओं को समाज के सम्मुख लाकर इस ओर सबका ध्यान आकर्षित करने व साथ ही इन समस्याओं के विरुद्ध इन्हें संघर्ष करने व जागरूक होने के लिए जिन प्रमुख हस्ताक्षरों ने कदम आगे बढ़ाए उनमें निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, ग्रेस क्रूजर, रमणिका गुप्ता, वंदना टेटे, रणेन्द्र सरिता बड़ाईक, महादेव टोप्पो, विनोद कुमार शुक्ल, अनामिका, रवि गौंड इत्यादि कवि प्रमुख हैं।

वर्तमान समय में आदिवासियों के सम्मुख जो एक प्रबल समस्या है, वह है विस्थापन की। इसका प्रमुख कारण यह है कि आज जो वैश्वीकरण का दौर चल रहा है उसने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सम्मुख बाजार के नये अवसर उपलब्ध कराये हैं, जिससे कि प्रत्येक राष्ट्र अपना–अपना प्रभुत्व स्थापित करने में लगा हुआ है। अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए वह इन आदिवासियों को भूमिहीन बनाकर इन्हें विस्थापन का दर्द सहने पर मजबूर कर रहा है। क्योंकि ये आदिवासी जिन निर्जन स्थानों, वनों, पर्वतों पर

निवाश करते हैं वहां कोयला, मैगनीज इत्यादि हैं। इसीलिए इन वनवासियों को वहाँ से भगाकर इनको इनकी भाषा व संस्कृति से दूर कर विस्थापन का दर्द सहने के लिए शहरों की ओर भगाया जा रहा है।
भूमि के मालिक को भूमिहीन बनाकर उनको उन्हीं के अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। आदिवासी समाज की इस पीढ़ा को मंगलेश डबराल ने मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखा है कि–

''अब क्षितिज पर बार–बार उसकी काली देह उभरती है
वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दिखता है
उसके आस–पास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की
यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है
उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है।''[3]

आज विकास के नाम पर आदिवासियों से उनकी हजारों एकड़ भूमि को हड़प लिया जा रहा है। प्रबंधन द्वारा उन्हें रोजगार भी नहीं दिया जा रहा है। आदिवासी समाज सरकार की इन विकासात्मक नीतियों के कारण विस्थापित होकर पलायन के लिए मजबूर है। आदिवासियों को यह हरगिज मंजूर नहीं है कि आधुनिकता या विकास के नाम पर उन्हें विस्थापित करके उनकी संस्कृति को जड़ से उखाड़ कर रख दिया जाय। आधुनिकीकरण व विकास के नाम पर इन वनवासियों को राजनेता या सरकार छल रही है। इन राजनेताओं के झूठे वादों के कारण इन बेकसूर लोगों को दर–दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं।
भूमि के मालिक को भूमिहीन बनाकर उसी की भूमि पर स्वयं खड़ा होकर आज उसी से उसका परिचय मांगा जा रहा है। निर्मला पुतुल ने इन तरह–तरह के प्रलोभन देकर जो झूठे सपने दिखाते हैं, ऐसे लुटेरे लोगों से सचेत रहने का आग्रह करते हुए व साथ ही जल, जंगल तथा जमीन की लड़ाई के पीछे जो विकास की राजनीति है उससे आदिवसी समाज को सावधान करते हुए अपनी कविता 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' में लिखा है कि–

''अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़ कर कल–कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कालोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।''[4]

इन आदिवासियों के विकास एवं उत्थान के लिए आज तरह–तरह की योजनाएं चलाकर उन योजनाओं के तहत विभिन्न कार्यक्रमों को संचालित करके इन लोगों को भी आमंत्रित किया जाता हैं इनके हाथों से उद्घाटन सत्र में फीता भी कटवाया जाता है व खूब तालियाँ बजाकर इनका भव्य स्वागत भी किया जाता है। लेकिन यह सब दिखावे बाजी करके इनके वास्तविक अधिकारों का हनन किया जाता है। इन विकासात्मक कार्यक्रमों में इनकी उपस्थिति दर्ज कराकर केवल एक औरचारिकता निभाई जाती है। इस औपचारिक उपस्थिति का खुलासा करते हुए मराठी कवि 'वाहः सोनवणे' ने अपनी स्टेज नाम कविता में लिखा है कि–

''हम मंच पर गये ही नहीं/और हमें बुलाया भी नहीं,
उंगली के इशारों से/हमें अपनी जगह दिखाई गई/हम वहीं बैठे रहे
हमें शाबासी मिली/वे मंच पर खड़े होकर/हमारा दुःख हमसे ही कहते रहे
हमारा दुःख हमारा ही रहा/कभी उनका नहीं हो पाया
हमने अपनी भांका फुसफुसाई/वे कान खड़े कर सुनते रहे
फिर ठंडी सांसे भरी और हमारे ही कान पकडकर हमें डाँटा/माफी मांगो वरना।''[5]

अशिक्षा और बेराजगारी के कारण हमेशा से ही इन भोले–भाले आदिवासियों का फायदा उठाया जाता रहा है। मानव तस्करों के द्वारा इनके मासूम बच्चों विशेषकर लड़कियों को बड़े–बड़े शहरों में स्थित प्लेसमेंट एजेंसी को बेच दिया जाता है, जहां इनके अंगों की तस्करी की जाती है। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में इस प्रकार की घटनाएँ एकदम आम हैं।
आदिवासी स्त्रियों को इस प्रकार की अमानवीय घटनाओं से सावधान व सचेत करने के लिए समकालीन हिंदी कवयित्री 'निर्मला पुतुल' ने अपने कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' में लिखा है कि बिटिया मुर्मू ये सौदागर लोग हैं जो लड़कियों का सौदा करने आते हैं। इनके इरादों को समझो व पहचानों तथा इनसे सावधान रहो–

''वे दबे–पांव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में
वे तुम्हारे नृत्य की बढ़ाई करते हैं
वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते हैं
वे कौन हैं?
सौदागर हैं वे.....समझो
पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मू.....पहचानो।''[6]

समकालीन आदिवासी कविता में आदिवासियों की अपनी पहचान व अस्तित्व को बचाये रखने की जिद्दोजहत भी प्रमुख रूप से दिखाई देती है। इनके अस्तित्व पर संकट के बादल छाए हुए हैं। इन भोले–भाले वनवासियों को तो यह भी नहीं मामूल कि आखिरकार इनके अस्तित्व पर यह संकट मंडरा क्यों रहा है? लेखिका निर्मला पुतुल ने अपनी कविता 'अपने घर की तलाश में' इन आदिवासियों के अस्तित्व के संकट को मार्मिकता के साथ वर्णित करते हुए लिखा है कि–

''घरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिये मैं
दौड़ती–हाँफती–भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर
अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ।''[7]

वर्तमान वैश्वीकरण की विकासात्मक अंधी दौड़ में आदिवासियों का सर्वत्र खोता चला रहा जा रहा है। इस मशीनीकरण के युग में न सिर्फ आदिवासियों से उनका रोजगार छीना है बल्कि उनकी नींद, चैन व इच्छाएँ भी छींन ली गयी हैं। यदि ये कहा जाए कि बाजारवाद ने इन आदिवासियों के हाथ व कुशलताएँ भी छीन ली हैं तो इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी।
हरिशंकर अग्रवाल ने अपनी कविता में इनकी वेदना का स्पष्ट रूप चित्रित किया है–

''मशीन छीन रहीं है/उनके हाथ और कुशलताएँ/उनकी नींद/और इक्कीसवीं सदी और कविताओं में उनकी पीड़ा को कहाँ दर्ज करें।''[8]

आज समकालीन हिंदी कविताओं के माध्यम से इस आदिवासी विमर्श को खुले रूप में अभिव्यक्ति मिली है। आदिवासियों से उनके जल, जंगल व जमीन के छीन लिये जाने की पीड़ा, विस्थापन का दर्द, अस्तित्व का संकट, उनकी विलुप्त होती संस्कृति व भाषा की व्यथा आदिवासी स्त्रियों के दुख–दर्द व बाजारवादी दौर में उनके रोजगार छीन जाने के कारण उनके बेराजगारी के संकट इत्यादि को समकालीन हिंदी आदिवासी विमर्श की कविताओं के के माध्यम से समाज के सम्मुख लाकर इनकी वास्तविक पीड़ा से सभी को रूबरू कराया गया है। अपने अस्तित्व को बचाने तथा एक बेहतर जिन्दगी जीने के लिए लेखिका निर्मला पुतुल ने अपने उद्‌बोधन गीत के माध्यम से इन आदिवासियों में चेतना जगाने का प्रयास किया है–

''उठो कि अपने अंधेरों के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो, कि तुम जहाँ हो वहां से उठो
जैसे तूफान से बवण्डर उठता है
उठती है जैसे राख में दबी चिनगारी।''[9]

आदिवासी विमर्श दिन–प्रतिदिन महत्वपूर्ण होते चला जा रहा है। इसका कारण यह है कि राजसत्ताओं व शासन के द्वारा जो अनके विकासात्मक योजनाएं चलाई जा रही हैं, जैसे ऑपरेशन ग्रीन हंट, भूमि अधिग्रहण कानून इत्यादि में यह आदिवासी समाज आज मजबूती के साथ संघर्षरत है और यह आदिवासी विमर्श तब तक जोरों से आगे बढ़ते रहेगा जब तक की इस आदिवासी समाज के साथ ही साथ सभ्य समाज के हृदय में भी इन आदिवासियों के अस्तित्व को बचाये रखने की चेतना जागृत नहीं हो जाती।

सन्दर्भ सूची

1. आदिवासी साहित्यः विविध आयाम, सं0 डॉ0 रमेश संभाजी कुरे/डॉ0 मालती छोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे; पृ0–41
2. हिंदी साहित्य आदिवासी चेतना की परख, सं0 डॉ0 पायल लिल्हारे; पृ0–66
3. नये युग में शत्रु, मंगलेश डबराल; पृ0–16
4. बेघर सपने, निर्मला पुतुल; पृं0–40
5. हिंदी साहित्य आदिवासी चेतना की परख, सं0 डॉ0 पायल लिल्हारे; पृ0–35
6. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, निर्मला पुतुल; पृ0–15–16
7. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, निर्मला पुतुल; पृ0–30
8. हिंदी साहित्य आदिवासी चेतना की परख, सं0 डॉ0 पायल लिल्हारे; पृ0–99
9. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, निर्मला पुतुल; पृ0–14